क़ुरआन

कुछ आवश्यक जानकारियाँ

लेखक
मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०)
अनुवादक
डॉ० कौसर यज़दानी नदवी

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान बड़ा कृपाशील है।'

दो शब्द

यह पुस्तक वास्तव में मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०) की सुप्रसिद्ध क़ुरआन-टीका 'तफ़हीमुल क़ुरआन' की भूमिका है। इसकी विषय-वस्तु के महत्व के कारण इसे अलग से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

लेखक महोदय ने इस भूमिका में शीर्षक, उपशीर्षक नहीं दिए थे, लेकिन इसकी आवश्यकता को देखते हुए हमने शीर्षक, उपशीर्षक विषयानुसार दे दिए हैं, जिससे इसका महत्व और बढ़ गया है।

इस भूमिका में क़ुरआन और क़ुरआन की प्रस्तुत टीका का परिचय कराने के अतिरिक्त क़ुरआन से सम्बन्धित उठनेवाले अनेक प्रश्नों पर वार्ता की गई है—उदाहरणार्थ क़ुरआन कैसे अवतरित हुआ? क़ुरआन में पुनरावृत्ति क्यों है और इसका क्या महत्व है? क़ुरआन पूर्ण पुस्तक रूप में कब संकलित हुआ और उसका संकलनकर्त्ता कौन है? क़ुरआन का अध्ययन करते समय किन बातों को ध्यान में पाठक को रखना चाहिए आदि।

पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं क़ुरआन के पाठक के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

हमें आशा है कि क़ुरआन मजीद के परिचय तथा उसके सम्बन्ध में उठनेवाले बहुत-से प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर इस पुस्तक में पाठकों को मिल जाएगा और वे इसे पढ़कर क़ुरआन मजीद से ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठा सकेंगे।

पहले यह पुस्तक 'क़ुरआन कैसे पढ़ें' शीर्षक से प्रकाशित की गई थी अब इसे 'क़ुरआन : कुछ आवश्यक जानकारियाँ', शीर्षक से प्रकाशित किया गया है।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

(अध्यक्ष इस्लामी साहित्य ट्रस्ट)

विषय-सूची

1.	क़ुरआन की वर्णन-शैली एवं अभिव्यंजना	5
2.	क़ुरआन की विषय-वस्तु	11
3.	पृष्ठभूमि	12
4.	आरंभिक परिस्थिति में क़ुरआन	13
5.	मक्का में अवतरित सूरतों (अध्यायों) की पृष्ठभूमि	14
6.	मदीना में अवतरित सूरतों (अध्यायों) की पृष्ठभूमि	16
7.	क़ुरआन की अपनी विशिष्ट शैली की सार्थकता	17
8.	विषयों की पुनरावृत्ति का औचित्य	18
9.	क़ुरआन का संकलन अवतरण-क्रम के अनुसार न होने का कारण	19
10.	क़ुरआन की हिफ़ाज़त	21
11.	क़ुरआन के पाठ का एकत्व	22
12.	क़ुरआन से लाभ उठाने हेतु कुछ आवश्यक सुझाव	23
13.	पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर क़ुरआन को पढ़ें	24
14.	क़ुरआन का अध्ययन बार-बार करें	24
15.	क़ुरआन से पूर्ण मार्गदर्शन हेतु ऐसा भी करें	25
16.	क़ुरआन की रूह से अवगत होने का तरीक़ा	26
17.	क़ुरआन की शिक्षाएँ सार्वकालिक हैं	27
18.	क़ुरआनी उपदेशों की विविध व्याख्या	30

क़ुरआन

कुछ आवश्यक जानकारियाँ

भूमिका शब्द देखकर किसी को यह भ्रम न हो कि मैं क़ुरआन की भूमिका लिख रहा हूं। यह क़ुरआन की नहीं 'तफ़हीमुल क़ुरआन, (क़ुरआन-प्रबोध) की 'भूमिका' है और इसके लिखने के मेरे सामने दो उद्देश्य हैं :—

एक यह कि क़ुरआन का अध्ययन शुरू करने से पहले एक सामान्य पाठक उन बातों को अच्छी तरह जान ले, जिन्हें आरम्भ ही में समझ लेने से क़ुरआन समझने की राह आसान हो जाती है, वरना ये बातें पढ़ते समय बराबर खटकती रहती हैं और कभी-कभी तो इन्हें न समझने के कारण एक व्यक्ति वर्षों क़ुरआन के अर्थों की ऊपरी सतह पर घूमता रहता है और गहराई में उतरने का रास्ता उसे नहीं मिलता।

दूसरे यह कि उन प्रश्नों के उत्तर पहले ही दे दिए जाएं, जो क़ुरआन को समझने की कोशिश करते समय आम तौर से लोगों के मन में पैदा हुआ करते हैं। मैं इस भूमिका में केवल उन प्रश्नों का उत्तर दूँगा, जो स्वयं मेरे मन में प्रथमतः पैदा हुए थे, या जिनसे बाद में मेरा वास्ता पड़ा। इनके अलावा अगर कुछ और प्रश्न भी उत्तर देने के लिए बाक़ी रह गए हों, तो उनसे मुझे अवगत कराया जाए, उनका उत्तर, अगर अल्लाह ने चाहा तो, अगले संस्करण में सम्मलित कर दिया जाएगा।

क़ुरआन की वर्णन-शैली एवं अभिव्यंजना

साधारणतया हम जिन पुस्तकों के पढ़ने के आदी हैं, उनमें एक निर्धारित विषय पर संबंधित जानकारियों, विचारों और दलीलों को एक विशेष क्रम के साथ लिख दिया जाता है। इसी कारण, जब एक ऐसा व्यक्ति, जो क़ुरआन से अभी तक अपरिचित रहा है, पहली बार इसके अध्ययन का इरादा करता है, तो वह यह आशा लिए हुए आगे बढ़ता है कि 'पुस्तक' होने की हैसियत से इसमें भी सामान्य पुस्तकों की भाँति पहले विषय का निर्धारण होगा, फिर मूल विषयों को खण्डों और अध्यायों में बाँटकर एक क्रम के साथ एक-एक पहलू पर वार्ता की जाएगी और

इसी प्रकार जीवन के एक-एक पहलू को भी अलग-अलग लेकर उसके बारे में आदेश व निर्देश लिखे होंगे। मगर जब वह पुस्तक खोलकर अध्ययन शुरू करता है, तो यहाँ उसे अपनी आशा के बिल्कुल विपरीत एक दूसरी ही वर्णन-शैली से वास्ता पड़ता है, जिससे वह अब तक बिल्कुल अपरिचित था। यहाँ वह देखता है कि विश्वास से सम्बन्धित बातें, नैतिक आदेश, शरई हुक्म (धर्म-विधान सम्बन्धी आदेश), सन्देश, उपदेश, शिक्षा-सामग्री, आलोचना, निन्दा, डरावा, शुभ-सूचना, तसल्ली, दलीलें, गवाहियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ; ब्रह्माण्ड में फैली निशानियों की ओर संकेत, बार-बार एक-दूसरे के बाद आ रहे हैं। एक ही विषय विभिन्न तरीक़ों से, विभिन्न शब्दों में दुहराया जा रहा है। एक विषय के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा अचानक शुरू हो जाता है, बल्कि एक विषय के बीच में दूसरा विषय एकाएक आ जाता है। सम्बोधित करनेवाला और वह जिसे सम्बोधित किया जा रहा है, बार-बार बदलते हैं और सम्बोधन रह-रहकर विभिन्न दिशाओं में फिरता है। अध्यायों और खण्डों में किसी प्रकार का कोई विभाजन नहीं। इतिहास है तो इतिहास की शैली में नहीं; दर्शन व पराप्राकृतिक बात है, तो तर्क व दर्शनशास्त्र की भाषा में नहीं; मानव और भौतिक वस्तुओं का उल्लेख है तो भौतिक विज्ञान के ढंग पर नहीं; सभ्यता और संस्कृति, अर्थ व सामाजिकता की बातें हैं तो सामाजिक विज्ञान के तरीक़े पर नहीं; क़ानून और उसके हुक्मों का बयान है तो क़ानूनदानों के ढंग से बिल्कुल अलग; नैतिकता की शिक्षा है तो नीति-दर्शन के पूरे साहित्य से उसकी शैली भिन्न—यह सब कुछ 'पुस्तक' के बारे में अपनी पिछली कल्पनाओं के ख़िलाफ़ पाकर आदमी परेशान हो जाता है और उसे ऐसा आभास होने लगता है मानो यह एक अक्रमबद्ध, असम्बद्ध तथा, बिखरी हुई वाणी है जो शुरू से लेकर आख़िर तक अगणित छोटे-बड़े विभिन्न बोलों पर आधारित है, मगर जिसे क्रमागत वाक्य के रूप में लिख डाला गया है। विरोधी दृष्टिकोण से देखनेवाला इसी पर नाना प्रकार की आपत्तियों व सन्देहों की नींव रख देता है और हिमायती दृष्टिकोण रखनेवाला कभी अर्थ की ओर से आँखें बन्द करके सन्देहों से बचने की कोशिश करता है, कभी इस प्रत्यक्ष क्रमहीनता के कुछ कारण बताकर अपने मन को समझा लेता है, कभी कृत्रिम रूप से क्रम खोजकर विचित्र नतीजे निकालता है और कभी 'छोटे-छोटे अंश' सरीखे सिद्धान्त को स्वीकार कर लेता है, जिसके कारण हर आयत अपने सन्दर्भ से हटकर ऐसे-ऐसे अर्थों का योग बन जाती है जो कहनेवाले के अभिप्राय के विपरीत होती है।

फिर एक पुस्तक को अच्छी तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि पढ़नेवाले को

उसका विषय मालूम हो, उसके उद्देश्य व ध्येय और उसके केन्द्रीय विषय का ज्ञान हो, उसकी वर्णन-शैली की जानकारी हो, उसकी पारिभाषिक भाषा और उसके विचार व्यक्त करने के विशेष ढंग से परिचित हो और उसके वर्णन अपने स्पष्ट वाक्यों के पीछे जिन परिस्थितियों व मामलों से सम्बन्ध रखते हों, वे भी नज़रों के सामने रहें। साधारण रूप से जो पुस्तकें हम पढ़ते हैं, उनमें ये चीज़ें आसानी से मिल जाती हैं, इसलिए उनके विषयों की तह तक पहुँचने में हमें कोई बड़ी कठिनाई नहीं होती, परन्तु कुरआन में ये चीज़ें उस तरह नहीं मिलतीं जिस तरह हम दूसरी पुस्तकों में इन्हें पाने के आदी रहे हैं। इसलिए एक सामान्य पाठक की-सी मनोवृत्ति लेकर जब हम में का कोई व्यक्ति क़ुरआन का अध्ययन शुरू करता है तो उसे किताब के विषय, ध्येय और केन्द्रीय विषय का पता नहीं मिलता, उसकी वर्णन-शैली और उसके विचार व्यक्त करने का ढंग भी उसे कुछ अजनबी-सा जान पड़ता है और अधिक स्थानों पर उसके वाक्यों की पृष्ठभूमि भी उसकी निगाहों से ओझल रहती है। नतीजा यह होता है कि विभिन्न आयतों में तत्त्वदर्शिता के जो मोती बिखरे हुए हैं, उनसे कमोबेश फ़ायदा उठाने के बावजूद एक व्यक्ति अल्लाह के कलाम (ईश-वाणी) की मूल आत्मा तक पहुँचने से वंचित रह जाता है और ग्रन्थ का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर उसे ग्रन्थ के कुछ बिखरे-से फ़ायदों पर ही संतोष कर लेना पड़ता है, बल्कि अधिकतर लोग जो क़ुरआन का अध्ययन करके सन्देहों के शिकार हो जाते हैं, उनके भटकने का एक कारण यह भी है कि क़ुरआन के समझने की इन आवश्यक आरम्भिक बातों से अनभिज्ञ रहते हुए जब वे इसका अध्ययन करते हैं तो उसके पन्नों पर विभिन्न विषय उन्हें बिखरे हुए नज़र आते हैं, अधिकांश आयतों का अर्थ उनपर स्पष्ट नहीं होता, बहुत-सी आयतों को देखते हैं कि वे स्वत: तत्त्वदर्शिता की ज्योति से जगमगा रही हैं, मगर आयत के सन्दर्भ में बिल्कुल बे-जोड़ महसूस होती हैं। अनेक स्थानों पर अर्थ-बोध और वर्णन-शैली से अनभिज्ञता उन्हें मूल अर्थ से हटाकर किसी और ही ओर ले जाती है और अधिकतर अवसरों पर पृष्ठभूमि का सही ज्ञान न होने से भारी ग़लतफ़हमियाँ पैदा हो जाती हैं।

क़ुरआन किस प्रकार की पुस्तक है? इसके उतरने का विवरण और उसके क्रम का रूप क्या है? इसकी वार्ता का विषय क्या है? इसकी वार्ताओं का मूलोउद्देश्य क्या है? किस केन्द्रीय विषय के साथ इसके ये अगणित और विभिन्न प्रकार के विषय संम्बद्ध हैं? इसने अपने विचार व्यक्त करने के तर्क का क्या ढंग और क्या वर्णन-शैली अपनायी है? ये और ऐसे ही कुछ दूसरे ज़रूरी प्रश्न हैं जिनका उत्तर साफ़ और सीधे ढंग से अगर मनुष्य को आरम्भ ही में मिल जाए तो

वह बहुत-से ख़तरों से बच सकता है और उसके लिए सोचने-समझने और ग़ौर करने की राहें खुल सकती हैं। जो व्यक्ति क़ुरआन में लेखन-क्रम खोजता है और वहाँ उसे न पाकर पुस्तक के पन्नों में भटकने लगता है, उसकी परेशानी का मूल कारण यही है कि वह क़ुरआन-अध्ययन की आरम्भिक बातों से अनभिज्ञ होता है। वह इस विचार को लेकर अध्ययन शुरू करता है कि वह 'धर्म के विषय पर एक पुस्तक' पढ़ रहा है। 'धर्म का विषय' और 'पुस्तक' के बारे में उसके मस्तिष्क में धारणा वही होती है जो आमतौर से 'धर्म' और 'पुस्तक' के बारे में मस्तिष्कों में पायी जाती है। मगर जब वहां उसे अपनी मानसिक धारणा से बिल्कुल भिन्न एक चीज़ मिलती है तो वह अपने अन्दर उसके प्रति रुचि उत्पन्न नहीं कर पाता और विषय का सिरा हाथ न आने के कारण पंक्तियों में यों भटकना शुरू कर देता है मानो वह एक अजनबी मुसाफ़िर है जो किसी नए शहर की गलियों में खो गया है। उसे इस प्रकार के भटकाव एवं विमार्गता से बचाया जा सकता है, यदि उसे पहले ही यह बता दिया जाए कि जिस पुस्तक को वह पढ़ने जा रहा है, वह पूरे संसार के साहित्य में अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। इसकी 'रचना' संसार की समस्त पुस्तकों से बिल्कुल भिन्न रूप से हुई है, अपने विषय और क्रम की दृष्टि से भी वह एक अनोखी चीज़ है, इसलिए तुम्हारे मस्तिष्क का वह 'पुस्तकीय-ढाँचा' जो अब तक के पुस्तक-अध्ययनों से बना है, इस पुस्तक के समझने में तुम्हारी सहायता न करेगा, बल्कि उलटी रुकावट डालेगा। इसे समझना चाहते हो तो अपनी पहले से बनी हुई परिकल्पनाओं को मस्तिष्क से निकालकर इसकी अनोखी विशेषताओं से परिचय प्राप्त करो।

इस सिलसिले में सबसे पहले पाठक को क़ुरआन की वास्तविकता से परिचित होना चाहिए। वह चाहे इस पर ईमान लाए, या न लाए, मगर इस पुस्तक को समझने के लिए उसे आरम्भ-बिन्दु के रूप में इसकी वही वास्तविकता माननी होगी जो स्वयं इसने और इसके पेश करनेवाले (अर्थात मुहम्मद सल्ल०)'ने बताई है और वह यह है :—

1. विश्व-स्वामी ने, जो सम्पूर्ण सृष्टि का पैदा करनेवाला, स्वामी और शासक है, अपने अपार राज्य के इस भाग में, जिसे पृथ्वी कहते हैं, मनुष्य को पैदा किया। उसे जानने और सोचने-समझने की शक्तियाँ दीं, भले और बुरे में अन्तर करने की योग्यता दी, चयन और निश्चय की आज़ादी दी, वस्तुओं के उपभोग के अधिकार दिए और बड़ी हद तक एक प्रकार का स्वाधिकार (Autonomy) देकर उसे पृथ्वी में अपना ख़लीफ़ा (नायब, प्रतिनिधि) बनाया।

2. इस पद पर मनुष्य को नियुक्त करते समय विश्व-स्वामी नें अच्छी तरह

उसके कान खोलकर यह बात उसके मस्तिष्क में डाल दी थी कि तुम्हारा और समस्त संसार का स्वामी, उपास्य और शासक मैं ही हूँ। मेरे इस राज्य में न तुम स्वाधीन हो, न किसी दूसरे के दास हो और न मेरे सिवा कोई तुम्हारी भक्ति, आज्ञापालन और उपासना का अधिकारी है। संसार का यह जीवन, जिसमें तुम्हें अधिकार देकर भेजा जा रहा है, वास्तव में तुम्हारे लिए एक परीक्षा की मुद्दत है, जिसके बाद तुम्हें मेरे पास वापस आना होगा और मैं तुम्हारे कर्मों की जाँच करके फ़ैसला करूँगा कि तुममें से कौन परीक्षा में सफल रहा है और कौन असफल। तुम्हारे लिए सही रवैया यह है कि मुझे अपना एकमात्र उपास्य और शासक मानो, जो निर्देश मैं भेजूँ उसके अनुसार संसार में काम करो और संसार को परीक्षा-स्थल समझते हुए, इस चेतना के साथ जीवन बिताओ कि तुम्हारा मूल उद्देश्य मेरे अन्तिम निर्णय में सफल होना हो। इसके विपरीत तुम्हारे लिए हर वह नीति ग़लत है जो इससे भिन्न हो, अगर पहली नीति अपनाओगे (जिसे अपनाने के लिए तुम स्वतंत्र हो) तो तुम्हें संसार में शान्ति-सन्तोष प्राप्त होगा और जब मेरे पास पलटकर आओगे तो मैं तुम्हें शाश्वत सुख-चैन का वह घर दूँगा, जिसका नाम 'जन्नत' है और अगर दूसरी किसी नीति पर चलोगे (जिस पर चलने के लिए भी तुमको स्वतंत्रता प्राप्त है) तो संसार में तुमको बिगाड़ और अशान्ति का मज़ा चखना होगा और इस लोक से गुज़र कर परलोक (आख़िरत) में जब आओगे, तो शाश्वत दुख व कष्ट के उस गढ़े में फेंक दिए जाओगे जिसका नाम 'दोज़ख़' है।

3. यह समझाने के बाद विश्व-स्वामी ने मानव-जाति को ज़मीन में जगह दी और इस जाति के सबसे पहले व्यक्तियों (आदम और हव्वा) को वे निर्देश भी दे दिए जिनके अनुसार उन्हें और उनकी औलाद को ज़मीन में काम करना था। ये प्रथम मानव अज्ञानता और अन्धकार की स्थिति में पैदा नहीं हुए थे, बल्कि अल्लाह ने पृथ्वी पर उनके जीवन का आरम्भ पूरे प्रकाश में किया था। वे सत्य परिचित थे। उन्हें उनका जीवन-विधान बता दिया गया था। उनका जीवन बिताने का तरीक़ा अल्लाह का आज्ञापालन (अर्थात् इस्लाम) था और वे अपनी औलाद को यही बात सिखाकर गए कि वे अल्लाह के आज्ञापालक (मुस्लिम) बनकर रहें। लेकिन बाद की सदियों में धीरे-धीरे मनुष्य उस सही जीवन-व्यवस्था से हटकर विभिन्न प्रकार की ग़लत नीतियों की ओर चल पड़े। उन्होंने ग़फ़लत से इसे गुम भी किया और दुष्टता के साथ इसका रूप भी बदल दिया। उन्होंने अल्लाह के साथ ज़मीन व आसमान की विभिन्न मानवीय व अमानवीय, काल्पनिक व भौतिक चीज़ों को अल्लाह का शरीक ठहरा लिया। उन्होंने अल्लाह के दिए हुए सत्य-ज्ञान में भाँति-भाँति के अन्धविश्वासों, धारणाओं और सिद्धान्तों की मिलावट करके

असंख्य धर्म पैदाकर लिए। उन्होंने अल्लाह की निर्धारित संस्कृति व सभ्यता के सर्वथा संतुलित एवं कल्याणकारी नियमों (शरीअत) को छोड़कर या उन्हें विकृत करके अपनी मनोकामनाओं और अपने अनुचित पक्षपातों के अनुसार जीवन के ऐसे नियम गढ़ लिए, जिनसे अल्लाह की ज़मीन ज़ुल्म (अन्याय व अत्याचार) से भर गई।

4. अल्लाह ने जो सीमित स्वाधीनता मनुष्य को दी थी, उसके साथ यह बात मेल न खाती थी कि वह स्रष्टा होने के अधिकार का इस्तेमाल करके इन बिगड़े हुए मनुष्यों को ज़बरदस्ती सही नीति की ओर मोड़ देता और उसने संसार में काम करने के लिए जो मुहलत इनके लिए और इनकी विभिन्न जातियों के लिए तय की थी, उसके साथ यह बात भी मेल न खाती थी कि इस विद्रोह के पैदा होते ही वह मनुष्यों को हलाक कर देता। फिर जो काम आदिकाल से उसने अपने ज़िम्मे लिया था कि मनुष्य की स्वाधीनता को बाक़ी रखते हुए, उसकी कार्यविधि में, उसके मार्गदर्शन का प्रबन्ध वह करता रहेगा। अतएव अपनी इस स्वत: डाली हुई ज़िम्मेदारी को अदा करने के लिए उसने मनुष्यों ही में से ऐसे व्यक्तियों को इस्तेमाल करना शुरू किया जो उस पर ईमान रखनेवाले और उसकी इच्छा का पालन करनेवाले थे। उसने उनको अपना नुमाइन्दा बनाया, अपने सन्देश उनके पास भेजे, उन्हें सत्य-ज्ञान दिया, उन्हें सही जीवन-विधान दिया और उन्हें इस काम पर नियुक्त किया कि आदम के बेटों को उसी सत्य-मार्ग की ओर पलटने को कहें, जिससे वे हट गए थे।

5. ये पैग़म्बर विभिन्न जातियों और देशों में आते रहे, हज़ारों वर्ष तक उनके आने का सिलसिला चलता रहा, हज़ारों की संख्या में वे भेजे गए, उन सभी का एक ही धर्म था, अर्थात् वह सही रीति, जो पहले दिन ही मनुष्य को बता दी गई थी। वे सब एक ही आदेश का पालन करनेवाले थे, अर्थात् नैतिकता व संस्कृति के वे आदिकालिक व अनन्त विधान जो आरम्भ ही में मनुष्य के लिए निश्चित कर दिए गए थे और उन सबका एक ही मिशन था, अर्थात् यह कि इस धर्म और इस मार्गदर्शन की ओर अपनी जातिवालों को बुलाएँ, फिर जो लोग इस आमंत्रण को स्वीकार कर लें, उन्हें संगठित करके एक ऐसा गिरोह बनाएँ जो स्वयं अल्लाह के क़ानून का पाबन्द हो और संसार में ईश्वरीय-विधान की स्थापना एवं उसके नियमों के उल्लंघन को रोकने के लिए संघर्ष करे। पैग़म्बरों ने अपने-अपने काल में अपने इस मिशन को भली-भांति पूरा किया, मगर सदैव यही होता रहा कि मनुष्यों की एक बड़ी संख्या तो उनके आह्वान को स्वीकार करने के लिए तैयार ही न हुई और जिन्होंने इसे स्वीकार करके आज्ञापालक गिरोह का रूप धारण कर लिया, वे

कालांतर में धीरे-धीरे स्वयं बिगड़ते चले गए, यहाँ तक कि इनमें से कुछ गिरोह ईश्वरीय आदेश को बिल्कुल ही भुला बैठे और कुछ ने ईश्वरीय-निर्देशों को अपने संशोधनों और मिलावटों से बिगाड़कर रख दिया।

6. अन्त में विश्व-स्वामी ने अरब भू-भाग में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को उसी काम के लिए भेजा, जिसके लिए पिछले नबी आते रहे। वे जनसाधारण को भी सम्बोधित करते थे और पिछले नबियों के बिगड़े हुए अनुयायियों को भी। सबको सही रीति की ओर बुलाना, सबको फिर से अल्लाह का मार्गदर्शन पहुँचाना और जो इस आह्वान और मार्गदर्शन को स्वीकार करें, उन्हें एक ऐसा गिरोह बना देना उनका काम था जो एक ओर स्वयं अपने जीवन की व्यवस्था अल्लाह के आदेशानुरूप स्थापित करें और दूसरी ओर संसार के सुधार के लिए संघर्ष करें — उस आह्वान व मार्गदर्शन की पुस्तक यह क़ुरआन है जिसे अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर उतारा।

क़ुरआन की इस वास्तविकता के मालूम हो जाने के बाद पाठकों के लिए यह समझना आसान हो जाता है कि इस पुस्तक का विषय क्या है? इसका केन्द्रीय विषय क्या है? और इसका उद्देश्य क्या है?

क़ुरआन की विषय-वस्तु

क़ुरआन का विषय मनुष्य है, इस दृष्टि से कि वास्तव में मनुष्य का हित और अहित किस चीज़ में है—प्रमुख रूप से वर्णित है।

मनुष्य ने बाह्य रूप को देखकर या अनुमान के आधार पर जो राय बना ली या इच्छा के वश में हो जाने के कारण अल्लाह और सृष्टि-व्यवस्था, अपने अस्तित्व और अपने सांसारिक जीवन के बारे में जो धारणाएँ स्थापित की हैं और उन धारणाओं के आधार पर जो रीति अपना ली है, वह सब, वास्तविकता की दृष्टि से ग़लत और परिणाम की दृष्टि से स्वयं मनुष्य ही के लिए विनाशकारी है। वास्तविकता वह है जो मनुष्य को ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बनाते समय अल्लाह ने स्वयं बता दी थी और इस वास्तविकता के मुताबिक़ मनुष्य के लिए वह रीति सही और सफल है, जिसका पिछले पृष्ठों में हम 'सही रीति' के नाम से उल्लेख कर चुके हैं।

उसका उद्देश्य मनुष्य को उस सही रीति की ओर बुलाना और अल्लाह के उस मार्गदर्शन को स्पष्ट रूप से पेश करना है, जिसे मनुष्य अपनी ग़फ़लत से गुम और अपनी दुष्टता से उसका रूप विकृत करता रहा है।

इन तीन बुनियादी बातों को मस्तिष्क में रखकर कोई व्यक्ति क़ुरआन को देखे तो उसे साफ़ दीख पड़ेगा कि यह ग्रंथ कहीं भी अपने विषय, अपने उद्देश्य और केन्द्रीय विषय से बाल बराबर भी नहीं हटा है। आरम्भ से लेकर अन्त तक उसके नाना प्रकार के विषय उसके केन्द्रीय विषय के साथ इस तरह जुड़े हुए हैं जैसे छोटे-बड़े रंग-बिरंग के हीरे-मोती हार की लड़ी में पिरोए हुए होते हैं। वह ज़मीन व आसमान की बनावट पर, मनुष्य की पैदाइश पर, सृष्टि के चिह्नों के निरीक्षण पर और पिछली जातियों की घटनाओं पर वार्ता करता है; विभिन्न जातियों के विश्वास व धारणाओं, चरित्र व आचरण पर टिप्पणी करता है; अनैसर्गिक मामलों व समस्याओं की व्याख्या करता है और बहुत-सी दूसरी चीज़ों का उल्लेख भी करता है, परन्तु इसलिए नहीं कि उसे भौतिकी या इतिहास या दर्शन या किसी अन्य कला की शिक्षा देनी है, बल्कि इसलिए कि उसे वास्तविकता के बारे में मनुष्य की ग़लतफ़हमियाँ दूर करनी हैं, मूल वास्तविकता लोगों के मन में बिठानी है, सत्य विरोधी रीति की ग़लती और दुष्परिणाम को स्पष्ट करना है और उस रीति की ओर बुलाना है जो वास्तविकता के अनुसार और अच्छे परिणामवाली है। यही कारण है कि वह हर वस्तु का उल्लेख केवल उस सीमा तक और उस शैली में करता है जो उसके उद्देश्य के लिए आवश्यक है। सदैव इन विषयों का वर्णन आवश्यकतानुसार करने के बाद, अनावश्यक विस्तारों में जाए बिना अपने उद्देश्य और केन्द्रीय विषय की ओर पलट आता है और उसका पूरा बयान बड़ी ही एकरूपता के साथ 'सन्देश' की धुरी पर घूमता रहता है।

पृष्ठभूमि

मगर क़ुरआन की वर्णन-शैली, इसके क्रम और इसके बहुत-से विषयों को मनुष्य उस समय तक अच्छी तरह नहीं समझ सकता जब तक कि वह इसके अवतरण की स्थिति को भी भली-भांति न समझ ले।

यह क़ुरआन ऐसी पुस्तक नहीं है कि अल्लाह ने एक ही समय में इसे लिखकर मुहम्मद (सल्ल०) को दे दिया हो और कह दिया हो कि इसे प्रकाशित करके लोगों को एक विशेष जीवन-पद्धति की ओर बुलाएँ। साथ ही यह इस प्रकार की पुस्तक भी नहीं है कि इसमें लेखकीय शैली पर पुस्तक के विषय के बारे में वार्ता की गई हो। यही कारण है कि इसमें न लेखकीय क्रम पाया जाता है और न पुस्तकों जैसी शैली। वास्तव में यह ऐसी पुस्तक है कि अल्लाह ने अरब के नगर मक्का में अपने एक बन्दे को पैग़म्बरी की सेवा के लिए चुना और उसे हुक्म दिया कि अपने शहर और अपने क़बीले (क़ुरैश) से सन्देश पहुँचाने की शुरुआत करे।

यह काम शुरू करने के लिए आरम्भ में जिन निर्देशों की ज़रूरत थी, केवल वही दिए गए और वे अधिकतर तीन विषयों पर आधारित थे:—

एक, पैग़म्बर को इस बात की शिक्षा कि वह स्वयं अपने आपको इस महान कार्य के लिए किस तरह तैयार करे और किस ढंग से काम करे।

दूसरे, वास्तविकता के बारे में आरम्भिक जानकारियाँ और उसके बारे में उन ग़लतफ़हमियों का सारतः खण्डन, जो आस-पास के लोगों में पाई जाती थीं जिनके कारण उनका रवैया ग़लत हो रहा था।

तीसरे सही रवैये की ओर आह्वान और ईश्वरीय सन्मार्ग के उन मूल नैतिक सिद्धांतों का वर्णन जिनके अनुपालन में मनुष्य का कल्याण और सौभाग्य है।

आरंभिक परिस्थिति में क़ुरआन

शुरू-शुरू के ये सन्देश आह्वान की आरम्भिक स्थिति की अनुकूलता से कुछ छोटे-छोटे संक्षिप्त बोलों पर आधारित होते थे जिनकी भाषा अति परिष्कृत, अत्यंत मधुर, एवं प्रभावकारी और सम्बोधित जाति की रुचि के अनुसार अति साहित्यिक रंग लिए हुए होती थी, ताकि दिलों में ये बोल वाण की तरह उतर जाएँ, कान स्वतः उनके स्वर-माधुर्य से आकृष्ट हों और ज़ुबानें उनके सुसन्तुलित होने के कारण, अनचाहे उन्हें दुहराने लगें। फिर उनमें स्थानीय वातावरण का प्रभाव अधिक था। यद्यपि वर्णन तो हो रहा था विश्वव्यापी तथ्यों का, पर उनके लिए दलीलें, गवाहियां और उदाहरण उस निकटतम वातावरण से लिए गए थे जिससे सम्बोधित वर्ग अच्छी तरह परिचित था। उन्हीं का इतिहास, उन्हीं की परिपाटियाँ, उन्हीं के रोज़ाना के तजुर्बे में आनेवाली निशानियाँ और उन्हीं के विश्वास संबंधी दुर्गुणों पर और नैतिक व सामूहिक दोषों पर सारी वार्ताएँ होती थीं, ताकि वे उससे प्रभावित हो सकें।

आह्वान का यह आरम्भिक काल लगभग चार-पाँच वर्ष तक जारी रहा और इस काल में नबी (सल्ल०) के प्रचार की प्रतिक्रिया तीन रूपों में प्रकट हुई:—

1. कुछ सदाचारी लोग इस आह्वान को स्वीकार करके 'मुस्लिम' (आज्ञाकारी) गिरोह बनने के लिए तैयार हो गए।

2. एक बड़ी संख्या अज्ञानता या स्वार्थवश या बाप-दादाओं की रीति से लगाव के कारण विरोध पर तत्पर हो गई।

3. मक्का और क़ुरैश की सीमाओं से निकलकर इस नए सन्देश की आवाज़ अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्र में पहुँचने लगी।

मक्का में अवतरित सूरतों (अध्यायों) की पृष्ठभूमि

यहां से उस आह्वान का दूसरा चरण शुरू होता है। इस चरण में इस्लाम के इस आन्दोलन और पुरानी अज्ञानता के बीच एक कठोर प्राणघातक संघर्ष शुरू हुआ, जिसका सिलसिला आठ-नौ वर्ष तक चलता रहा। न केवल मक्का में, न केवल क़ुरैश के क़बीले में, बल्कि अरब के अधिकांश भागों में भी जो लोग पुरानी अज्ञानता को बाक़ी रखना चाहते थे, वे इस आन्दोलन को बलपूर्वक मिटाने पर तुल गए। उन्होंने इसे दबाने के लिए सारी चालें चल डालीं, झूठा दुष्प्रचार किया, आरोपों, सन्देहों और आपत्तियों की वर्षा की, जनसाधारण के दिलों में भांति-भांति के भ्रम पैदा किए, अनजान लोगों को नबी (सल्ल०) की बात सुनने से रोकने की कोशिशें कीं, इस्लाम स्वीकार करनेवालों पर अति बर्बरतापूर्ण अत्याचार किए, उनका आर्थिक व सामाजिक बहिष्कार किया और उन्हें इतना सताया कि उनमें से बहुत-से लोग दो बार अपने घर छोड़कर हब्शा (इथोपिया) की ओर हिजरत कर जाने पर विवश हुए और अन्ततः तीसरी बार उन सबको मदीना की ओर हिजरत करनी पड़ी। परन्तु इस प्रबल और दिन-प्रतिदिन बढ़ते विरोधों के उपरांत भी यह आन्दोलन ज़ोर पकड़ता गया। मक्का में कोई परिवार और कोई घर ऐसा न रहा, जिसके किसी-न-किसी सदस्य ने इस्लाम स्वीकार न कर लिया हो। इस्लाम के अधिकांश विरोधियों के विरोध और शत्रुता में उग्रता और कटुता पैदा होने का कारण यही था कि उनके अपने भाई, भतीजे, बेटे, बेटियाँ, बहनें और बहनोई इस्लामी सन्देश के न केवल माननेवाले, बल्कि प्राण तक न्यौछावर करनेवाले और समर्थक हो गए थे और उनके अपने दिल और जिगर के टुकड़े ही उनसे संघर्ष करने पर उतारू थे। फिर जो लोग पुरानी अज्ञानता से टूट-टूटकर इस नव-अंकुरित आन्दोलन की ओर आ रहे थे, वे पहले भी अपने समाज के सबसे अच्छे लोग समझे जाते थे और इस आन्दोलन में शामिल होने के बाद तो इतने नेक, इतने सच्चरित्र और इतने सदाचारी इनसान बन जाते थे कि संसार उस सन्देश की श्रेष्ठता महसूस किए बिना रह नहीं सकता था, जो ऐसे लोगों को अपनी ओर खींच रहा था और उन्हें यह कुछ बना रहा था।

इस दीर्घकालीन और प्रबल संघर्ष के समय में अल्लाह अवसर और आवश्यकता के अनुसार अपने नबी पर ऐसे जोशीले भाषण अवतरित करता रहा जिनमें नदी जैसा बहाव, बाढ़ जैसी शक्ति और धधकती आग जैसा प्रभाव था।

उन भाषणों में एक ओर ईमानवालों को उनके आरम्भिक कर्त्तव्य बताए गए, उनके भीतर सामूहिक चेतना पैदा की गई, उन्हें संयम, चारित्रिक महत्व और आचरण की शुद्धता की शिक्षा दी गई, उन्हें सत्य-धर्म के प्रचार के तरीक़े बताए गए, सफलता के वादों और जन्नत की शुभ-सूचनाओं से उनमें हिम्मत बँधाई गई, उन्हें जमाव, ठहराव और उत्साह के साथ अल्लाह की राह में संघर्ष करने पर उभारा गया और जान पर खेल जाने का ऐसा प्रबल जोश और हौसला उनमें पैदा किया गया कि वे हर कष्ट को झेल जाने और विरोध की बड़ी-से-बड़ी आंधियों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो गए। दूसरी ओर विधर्मियों, सन्मार्ग से विमुख होनेवालों और ग़फ़लत की नींद सोनेवालों को उन जातियों के दुष्परिणामों से डराया गया जिनका इतिहास वे स्वयं जानते थे, उन नष्ट-विनष्ट हो जानेवाली आबादियों के चिह्नों से शिक्षा लेने को कहा गया, जिनको खण्डहरों पर से रात-दिन अपनी-अपनी यात्राओं में उनका गुज़र होता था, तौहीद (एकेश्वरवाद) और आख़िरत (परलोक) की दलीलें उन खुली-खुली निशानियों से दी गईं जो रात दिन पृथ्वी और आकाश में उनकी आँखों के सामने मौजूद थीं और जिन्हें वे अपने जीवन में भी हर समय देखते और महसूस करते थे, शिर्क (बहुदेववाद), स्वच्छन्दता का दावा, आख़िरत से इंकार और पूर्वजों की रीतियों पर अनुगमन सरीखी ग़लतियाँ ऐसी खुली दलीलों से स्पष्ट की गईं, जो मन में बैठ जाने और मस्तिष्क में उतर जानेवाली थीं। फिर उनके एक-एक भ्रम का निवारण किया गया, एक-एक आपत्ति का उचित उत्तर दिया गया, एक-एक उलझन, जिसमें वे स्वयं पड़े हुए थे, या दूसरों को उलझाने की कोशिश करते थे, साफ़ की गई और हर ओर से घेर कर अज्ञानता को इतनी सख़्ती से पकड़ा गया कि बुद्धि व विवेक के जगत में उसके लिए ठहरने की कोई जगह बाक़ी न रही। इसके साथ फिर उनको अल्लाह के प्रकोप, क़ियामत की भयावहता और जहन्नम के अज़ाब से डराया गया, उसके दुराचारों, ग़लत जीवन-रीतियों, अज्ञानतापूर्ण रस्मों, सत्य की शत्रुता और ईश्वर के प्रति समर्पित लोगों अर्थात् मुसलमानों को कष्ट पहुँचाने पर उनकी निन्दा की गई और संस्कृति व सभ्यता के वे बड़े-बड़े मौलिक सिद्धान्त उनके सामने पेश किए गए जिन पर सदा से अल्लाह की प्रिय शुद्ध सभ्यताओं का निर्माण होता चला आ रहा है।

यह चरण स्वत: विभिन्न मंज़िलों पर आधारित था, जिनमें से हर मंज़िल में इस्लाम का आह्वान अधिक विस्तृत होता चला गया, जिद्दोजुहद के साथ-साथ विरोध में भी तेज़ी आ गई, विभिन्न विश्वासों, धारणाओं और नाना प्रकार की कार्य-पद्धतियों के रखनेवाले गिरोहों से वास्ता पड़ता गया और उसी के अनुसार अल्लाह की ओर से आनेवाले सन्देशों में विषयों की विविधता बढ़ती गई — यह है क़ुरआन मजीद की मक्की सूरतों की पृष्ठभूमि।

मदीना में अवतरित सूरतों (अध्यायों) की पृष्ठभूमि

मक्का में इस आन्दोलन को अपना काम करते हुए तेरह वर्ष बीत चुके थे कि एकाएक मदीना में उसको एक ऐसा केन्द्र मिल गया, जहाँ उसके लिए यह सम्भव हो गया कि अरब के तमाम भागों से अपने अनुयायियों को समेटकर एक जगह अपनी शक्ति जुटा ले। अतएव नबी (सल्ल०) और इस्लाम के अधिकतर अनुयायी हिजरत करके मदीना पहुँच गए। इस तरह यह आह्वान तीसरे चरण में प्रवेश कर गया।

इस चरण में परिस्थितियों का रूप बिल्कुल बदल गया। मुस्लिम समुदाय विधिवत रूप से एक राज्य की नींव डालने में सफल हो गया। पुरानी अज्ञानता के ध्वजावाहकों से सशस्त्र मुक़ाबला शुरू हुआ, पिछले नबियों की उम्मतों (यहूदियों एवं ईसाइयों) का भी सामना करना पड़ा। स्वयं मुस्लिम उम्मत की आन्तरिक व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के कपटाचारी (मुनाफ़िक़) घुस आए और उनसे भी निबटना पड़ा और दस साल के घोर संघर्ष से गुज़र कर अन्ततः यह आन्दोलन सफलता की उस मंज़िल पर पहुँचा कि पूरा अरब उसके अधीन हो गया और विश्वव्यापी आह्वान एवं सुधार के द्वार उसके सामने खुल गए। इस चरण की भी विभिन्न मंज़िलें थीं और हर मंज़िल में इस आन्दोलन की विशिष्ट आवश्यकताएँ थीं। इन आवश्यकताओं के अनुसार अल्लाह की ओर से ऐसे वक्तव्य नबी (सल्ल०) पर अवतरित होते रहे जिनकी शैली कभी जोशीले वक्ताओं की, कभी राजकीय आदेशों की, कभी शिक्षकों के शिक्षा देने की, कभी सुधारकों के समझाने-बुझाने की होती थी। इनमें बताया गया कि समाज, राज्य और शुद्ध संस्कृति का निर्माण किस तरह किया जाए। जीवन के विभिन्न विभागों को किन नियमों व सिद्धान्तों पर व्यवस्थित किया जाए, कपटाचारियों (मुनाफ़िक़ों) से क्या व्यवहार हो, राज्य के ग़ैर-मुस्लिमों से क्या बर्ताव हो, किताबवालों (यहूदियों और ईसाइयों) से सम्बन्धों का क्या रूप रहे, लड़ रहे शत्रुओं और समझौता कर लेनेवाली जातियों के साथ क्या नीति अपनाई जाए और ईमानवालों का यह सुसंगठित गिरोह संसार में अल्लाह के प्रतिनिधित्व (ख़िलाफ़त) का कर्त्तव्य निभाने के लिए अपने-आपको किस तरह तैयार करे। इन वक्तव्यों में एक ओर मुसलमानों को परिक्षित किया जाता था, उनकी कमज़ोरियों पर उन्हें सचेत किया जाता था, उनको अल्लाह की राह में जान-माल से संघर्ष करने पर उभारा जाता था, उनको विजय और पराजय, सुख-दुख, ख़ुशहाली-बदहाली, शांति और भय, तात्पर्य यह कि

हर स्थिति में उसी के अनुकूल नैतिकता व सदाचार का पाठ पढ़ाया जाता था और उन्हें इस तरह तैयार किया जाता था कि वे नबी (सल्ल०) के बाद आपके उत्तराधिकारी बनकर आह्वान और सुधार के इस काम को पूरा कर सकें। दूसरी ओर उन लोगों को जो ईमानवाले नहीं थे— किताबवाले, मुनाफ़िक़ (कपटाचारी), अधर्मी और बहुदेववादी, सबको अलग-अलग हालात के मुताबिक़ समझाने, नरमी से इस्लाम की ओर बुलाने, सख़्ती से निन्दा करने और उपदेश देने, अल्लाह के अज़ाब से डराने और शिक्षाप्रद घटनाओं व स्थितियों से शिक्षा दिलाने की कोशिश की जाती थी, ताकि हर पहलू से स्पष्ट होकर बात उनके सामने आ जाए।

यह है क़ुरआन मजीद की उन सूरतों (अध्यायों) की पृष्ठभूमि जो मदीना में अवतरित हुई हैं।

क़ुरआन की अपनी विशिष्ट शैली की सार्थकता

उपर्युक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि क़ुरआन एक आह्वान के साथ उतरना शुरू हुआ और वह आह्वान अपने आरम्भ से लेकर अपने पूर्ण होने तक 23 साल की मुद्दत में जिन-जिन चरणों और मंज़िलों से गुज़रता रहा, उनकी विभिन्न आवश्यकताओं के अनुसार क़ुरआन के विभिन्न अंश उतरते रहे। स्पष्ट है कि ऐसी पुस्तक में वह लेखकीय क्रम नहीं हो सकता जो डाक्ट्रेट की डिग्री लेने के लिए किसी शोध-पत्र में अपनाया जाता है। फिर इस आह्वान के प्रसार के साथ-साथ क़ुरआन के जो छोटे और बड़े अंश अवतरित हुए, वे भी लेखों के रूप में प्रकाशित नहीं किए जाते थे, बल्कि भाषणों के रूप में वर्णित होते और इसी रूप में फैलाए जाते थे। इसलिए उनकी शैली भी लेख जैसी न थी, बल्कि भाषण — शैली थी। फिर ये भाषण भी एक प्रोफ़ेसर के व्याख्यानों जैसे नहीं, बल्कि एक आह्वाहक के वक्तव्यों जैसे थे, जिसे मन-मस्तिष्क, बुद्धि और भावना, हर एक से अपील करना होता है, जिसे हर प्रकार की मनोवृत्तियों से वास्ता पड़ता है, जिसे अपने सन्देश-प्रचार व प्रसार और व्यावहारिक आन्दोलन के सिलसिले में नाना प्रकार की अगणित परिस्थितियों में काम करना पड़ता है, हर संभव तरीक़े से अपनी बात दिलों में बिठाना, विचारों की दुनिया बदलना, भावनाओं को उद्वेलित करना, विरोधियों का ज़ोर तोड़ना, साथियों को सुधारना, और उन्हें प्रशिक्षित करना तथा उनमें उत्साह भरना, दुश्मनों को दोस्त, इंकारियों को इक़रारी बनाना, विरोधियों के तर्कों को काटना, उनकी नैतिक शक्ति का उन्मूलन करना, तात्पर्य यह कि उसे हर

सम-विषम परिस्थितियों का सामना एवं संघर्ष करना पड़ता है। इसलिए अल्लाह ने इस काम के सिलसिले में अपने पैग़म्बर पर जो भाषण उतारे उनकी शैली वही थी जो एक आह्वान के लिए उपयुक्त होती है, उनमें कॉलेज के व्याख्यानों जैसी शैली खोजना सही नहीं है।

विषयों की पुनरावृत्ति का औचित्य

यहीं से यह बात भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है कि क़ुरआन में विषयों की इतनी पुनरावृत्ति क्यों है? एक आन्दोलन और उसके प्रसार का स्वाभाविक तक़ाज़ा यह है कि वह जिस समय जिस चरण में हो, उसमें वही बातें कही जाएं जो उस चरण से मेल खाती हों। जब तक आन्दोलन एक मरहले में रहे, बाद के चरण की बात न छेड़ी जाए, बल्कि उसी चरण की बातों को दुहराया जाता रहे, भले ही उसमें कुछ महीने लगें या कई वर्ष लग जाएँ। फिर अगर एक ही प्रकार की पुनरावृत्ति एक ही शैली और एक ही ढंग पर की जाती रहे तो कान उन्हें सुनते-सुनते थक जाते हैं और जी ऊबने लगते हैं, इसलिए यह भी ज़रूरी है कि हर मामले में जो बातें बार-बार कहनी हों, उन्हें हर बार नए शब्द, नई शैली, और नए ढंग से कहा जाए, ताकि अति मनमोहक ढंग से वह दिलों में बैठ जाए और आन्दोलन की एक-एक मंज़िल भली-भांति दृढ़ होती चली जाए। साथ ही यह भी ज़रूरी है कि आह्वान जिन विश्वासों और सिद्धान्तों के आधार पर हो, उन्हें पहले क़दम से आख़िरी मंज़िल तक किसी समय और किसी दशा में भी नज़रों से ओझल न होने दिया जाए, बल्कि इनकी पुनरावृत्ति हर हाल में आह्वान के हर चरण में होती रहे। यही कारण है कि इस्लामी आन्दोलन के एक चरण में क़ुरआन की जितनी सूरतें (अध्याय) उतरी हैं, उन सब में सामान्यत: एक ही जैसे विषय-शब्द और वर्णन-शैलियाँ बदल-बदल कर आई हैं, मगर तौहीद (एकेश्वरवाद), अल्लाह के गुण, आख़िरत (परलोक) और उसकी पूछगच्छ, जज़ा व सज़ा (पुरस्कार एवं दण्ड), रिसालत (ईशदूतत्व), किताब पर ईमान, संयम, सब्र, अल्लाह पर भरोसा और इसी प्रकार के दूसरे मौलिक विषयों की पुनरावृत्ति पूरे क़ुरआन में नज़र आती है, क्योंकि इस आन्दोलन के किसी चरण में भी इनसे ग़फ़लत सहन नहीं की जा सकती थी। ये मौलिक धारणाएँ अगर ज़रा भी कमज़ोर हो जातीं तो इस्लाम का यह आन्दोलन अपनी सही आत्मा के साथ नहीं चल सकता था।

क़ुरआन का संकलन अवतरण क्रम के अनुसार न होने का कारण

अगर विचार किया जाए तो इसी बात से यह प्रश्न भी हल हो जाता है कि नबी (सल्ल०) ने क़ुरआन को उसी क्रम के साथ क्यों न संग्रहीत कर दिया जिसके साथ वह उतरा था?

ऊपर आपको मालूम हो चुका है कि 23 साल तक क़ुरआन उस क्रम से उतरता रहा जिससे आन्दोलन का आरम्भ और उसका प्रसार हुआ। अब यह स्पष्ट है कि आन्दोलन के पूरे हो जाने के बाद इन अवतीर्ण अंशों के लिए वह क्रम किसी प्रकार भी सही नहीं हो सकता था जो केवल सन्देश-प्रसार ही के साथ मेल खाता था। अब तो उनके लिए एक दूसरा ही क्रम चाहिए था, जो आन्दोलन-समाप्ति के बाद की परिस्थितियों के लिए अधिक उपयुक्त हो, क्योंकि आरम्भ में उन लोगों को सम्बोधित किया गया था जो इस्लाम से बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे, इसलिए उस समय बिल्कुल आरम्भ से शिक्षा-उपदेश शुरू किया गया। परन्तु आन्दोलन के पूरा हो जाने के बाद अब उसके प्रथम संबोधित पक्ष के वे लोग हो गए, जो एक उम्मत (गिरोह, समुदाय) बन चुके थे और उस काम को जारी रखने के ज़िम्मेदार समझे गए थे जिसे पैग़म्बर ने विचारों व व्यवहार दोनों हैसियतों से पूर्ण करके उनके सुपुर्द किया था। अब निश्चित रूप से पहली चीज़ यह हो गई कि पहले ये लोग स्वयं अपने कर्त्तव्यों से, अपने जीवन-सिद्धान्तों से और उन बिगाड़ों से जो पिछले पैग़म्बरों के अनुयायियों में पैदा होते रहे हैं, भली-भांति परिचित हो लें, फिर इस्लाम से अपरिचित संसार के सामने अल्लाह का सन्मार्ग स्पष्ट करने के लिए आगे बढ़ें।

इसके अलावा क़ुरआन मजीद जिस प्रकार की पुस्तक है, उसे अगर आदमी अच्छी तरह समझ ले तो उस पर स्वयं ही यह वास्तविकता प्रकट हो जाएगी कि एक-एक प्रकार के विषयों का एक-एक जगह इकट्ठा करना, इस पुस्तक के स्वभाव से ही मेल नहीं खाता। इसके स्वभाव की अपेक्षा तो यही है कि इसके पढ़नेवाले के सामने आन्दोलन के मदीनावाले चरण की बातें मक्कावाले चरण की शिक्षाओं के मध्य और मक्कावाले चरण की बातें मदीना-काल वाले भाषणों के मध्य और आरम्भिक वार्ताएँ अन्त के उपदेशों के बीच में और अन्तिम काल के आदेश आरम्भिक काल की शिक्षाओं के पहलू में बार-बार आती चली जाएँ, ताकि इस्लाम का पूरा और व्यापक रूप उसकी दृष्टि में रहे और किसी समय भी वह एकांगी न होने पाए।

फिर अगर क़ुरआन को उसके उतरने के क्रम पर संकलित किया जाता तो वह क्रम बाद के लोगों के लिए केवल उसी दशा में सार्थक हो सकता था, जबकि क़ुरआन के साथ उसके उतरने का पूरा इतिहास और उसके एक-एक अंश के साथ उसके उतरने का विवरण और कारण लिखकर लगा दिया जाता और वह अनिवार्य रूप से क़ुरआन का एक परिशिष्ट बनकर रहता। यह बात उस उद्देश्य के विरुद्ध थी जिसके लिए अल्लाह ने अपनी वाणी का यह संग्रह संकलित और सुरक्षित कराया था। वहाँ तो यही चीज़ सामने थी कि अल्लाह की विशुद्ध वाणी किसी दूसरी वाणी की मिलावट या मिश्रण के बिना अपने संक्षिप्त रूप में संकलित हो, जिसे बच्चे, जवान, बूढ़े, औरत, मर्द, शहरी, देहाती, जन-साधारण, विद्वान सभी पढ़ें, हर ज़माने में और हर जगह, हर हालात में पढ़ें और बुद्धि तथा विवेक के हर स्तर का व्यक्ति कम से कम यह बात ज़रूर जान ले कि उसका स्वामी उससे क्या चाहता है और क्या नहीं चाहता। स्पष्ट है कि यह उद्देश्य विलुप्त हो जाता अगर ईश-वाणी के इस संकलन के साथ लम्बा-चौड़ा इतिहास भी लगा हुआ होता और उसका पढ़ना भी अनिवार्य कर दिया जाता।

सच तो यह है कि क़ुरआन के वर्तमान क्रम पर जो लोग आपत्ति करते हैं, वे लोग इसके ध्येय व उद्देश्य से न केवल अनभिज्ञ हैं, बल्कि कुछ इस भ्रम में पड़े हुए होते हैं कि यह पुस्तक मात्र इतिहास, दर्शन और सामाजिक विज्ञान के अध्ययनकर्ताओं के लिए ही उतरी है। क़ुरआन में वर्णित विषयवस्तु के क्रमस्थापन के संबंध में यह बात भी पाठकों को मालूम रहनी चाहिए कि यह क्रम बाद के लोगों का बनाया हुआ नहीं है, बल्कि स्वयं अल्लाह के आदेशानुसार नबी (सल्ल०) ही ने क़ुरआन को इस रूप में संकलित किया था। नियम यह था कि जब कोई सूरा उतरती तो आप उसी समय अपने कातिबों (लिखनेवालों) में से किसी को बुलाते और उसको ठीक-ठीक लिखवा देने के बाद हिदायत कर देते कि यह सूरा फ़लाँ सूरा के बाद और फ़लाँ सूरा से पहले रखी जाए। इसी प्रकार अगर क़ुरआन का कोई ऐसा अंश उतरता जिसे स्थाई सूरा बनाना दृष्टिगत न होता तो नबी (सल्ल०) हिदायत कर देते थे कि इसे फ़लाँ सूरा में फ़लाँ जगह लिख दिया जाए। फिर उसी क्रम से आप (सल्ल०) स्वयं भी नमाज़ में और दूसरे मौक़ों पर क़ुरआन मजीद का पाठ करते और उसी क्रम के अनुसार आपके साथी भी उसे याद करते थे। इसलिए यह एक प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्य है कि क़ुरआन मजीद का अवतरण जिस दिन पूरा हुआ, उसी दिन उसकी विषयवस्तु का क्रमस्थापन भी हो गया। जो इसे अवतरित कर रहा था, वास्तव में वही इसे संकलित भी कर रहा था। जिस व्यक्ति पर वह उतारा गया, उसी के हाथों उसे संकलित भी करा दिया गया। कोई दूसरा इसकी क्षमता न रखता था कि उसमें हस्तक्षेप करता।

क़ुरआन की हिफ़ाज़त

चूंकि नमाज़ शुरू ही से मुसलमानों पर फ़र्ज़ (अनिवार्य) थी[1] और क़ुरआन-पाठ को नमाज़ का एक आवश्यक अंग समझा गया था, इसलिए क़ुरआन के अवतरण के साथ ही मुसलमानों में क़ुरआन कंठस्थ करने का सिलसिला चल पड़ा और जैसे-जैसे क़ुरआन उतरता गया, मुसलमान उसे याद भी करते चले गए। इसी प्रकार क़ुरआन की सुरक्षा खजूर के उन पत्तों, और हड्डी और झिल्ली के उन टुकड़ों ही पर निर्भर न थी जिन पर नबी (सल्ल०) अपने कातिबों से उसे लिखवाया करते थे, बल्कि वह उतरते ही बीसियों, फिर सैकड़ों, फिर हज़ारों, फिर लाखों हृदय-पटल पर अंकित हो जाता था और किसी शैतान के लिए यह सम्भव न रहता था कि इसमें एक शब्द का भी हेर-फेर कर सके।

नबी (सल्ल०) की मृत्यु के बाद जब अरब में धर्म-विमुखता का तूफ़ान उठा और उसका मुक़ाबला करने के लिए सहाबियों (नबी सल्ल० के साथियों) को बड़ी घमासान की लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं तो इन लड़ाइयों में ऐसे सहाबियों की एक बड़ी संख्या शहीद हो गई, जिन्हें पूरा क़ुरआन कंठस्थ था। इससे नबी (सल्ल०) के साथी हज़रत उमर (रज़ि०) के मन में विचार आया क़ुरआन की सुरक्षा के मामले में केवल एक ही साधन पर भरोसा कर लेना उचित नहीं, बल्कि हृदय-पटल पर अंकित होने के साथ-साथ काग़ज़ के पन्नों पर भी उसे सुरक्षित करने का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। अतएव इस काम की ज़रूरत उन्होंने हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) से बयान की और उन्होंने सोच-विचार के बाद हज़रत ज़ैद बिन साबित अंसारी (रज़ि) को, जो नबी (सल्ल०) के कातिब रह चुके थे; इस सेवा पर नियुक्त किया। नियम यह बनाया गया कि एक ओर तो लिखे हुए वे तमाम अंश जुटाए जाएँ जो नबी (सल्ल०) ने छोड़े हैं। दूसरी ओर सहाबियों में से भी जिस-जिसके पास क़ुरआन या उसका कोई अंश लिखा हुआ मिले, वह उनसे ले लिया जाए।[2] और फिर क़ुरआन के हाफ़िज़ों से भी मदद ली जाए और इन तीनों साधनों की सर्वसम्मत

---

1. स्पष्ट रहे कि पाँच वक्त की नमाज़ तो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के नबी होने के कई साल बाद फ़र्ज़ हुई, परन्तु नमाज़ अपने आप में पहले दिन ही से फ़र्ज़ थी। इस्लाम की कोई ऐसी घड़ी कभी नहीं गुज़री है जिसमें नमाज़ फ़र्ज़ न रही हो।
2. विश्वसनीय उल्लेखों से ज्ञात होता है कि नबी (सल्ल०) के जीवन में अनेक सहाबियों ने क़ुरआन को या उसके विभिन्न अंशों को अपने पास लिख छोड़ा था। अतएव इस सिलसिले में हज़रत उस्मान, अली, अब्दुल्लाह बिन मसऊद, अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस, सालिम मौला हुज़ैफ़ा, ज़ैद बिन साबित, मुआज़ बिन जबल, उबई बिन कअब और अबू ज़ैद क़ैस बिन सुक्कन (रज़ि०) के नामों का विवरण मिलता है।

गवाही पर, बिल्कुल सही होने का इत्मीनान करने के बाद क़ुरआन का एक-एक शब्द ग्रंथ में अंकित कर दिया जाए। इस प्रस्ताव के अनुसार क़ुरआन मजीद की एक प्रमाणित प्रति तैयार करके उम्मुल मोमिनीन (नबी सल्ल० की धर्म पत्नी) हज़रत हफ़सा (रज़ि०) के यहाँ रखवा दी गई और लोगों को आम इजाज़त दे दी गई कि जो चाहे इसकी नक़ल करे और जो चाहे इससे मिलाकर अपनी प्रति ठीक कर ले।

क़ुरआन के पाठ का एकत्व

अरब में विभिन्न क्षेत्रों और क़बीलों की बोलियों में वैसे ही अन्तर पाए जाते थे जैसे हमारे देश में नगर-नगर की बोली और ज़िले-ज़िले की बोली में अन्तर है, हालाँकि भाषा सबकी वही एक हिन्दी या उर्दू या पंजाबी या बंगाली आदि है। क़ुरआन मजीद यद्यपि उतरा उस भाषा में था जो मक्का में क़ुरैश के लोग बोलते थे, लेकिन आरम्भ में इस बात की इजाज़त दे दी गई थी कि दूसरे क्षेत्रों और क़बीलों के लोग अपनी-अपनी ध्वनि और शैली के अनुसार उसे पढ़ लिया करें, क्योंकि इस प्रकार अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता था, मात्र शब्द व वाक्य उनके लिए नरम हो जाते थे, परन्तु धीरे-धीरे जब इस्लाम फैला और अरब के लोगों ने अपने रेगिस्तान से निकलकर संसार के एक बड़े भाग पर विजय प्राप्त कर ली और दूसरी जातियों के लोग भी इस्लाम में दाख़िल होने लगे और बड़े पैमाने पर अरब व ग़ैर-अरब के मेल-जोल से अरबी भाषा पर भी प्रभाव पड़ने लगा तो यह भय पैदा हुआ कि अगर अब भी दूसरी ध्वनियों और शैलियों के अनुसार क़ुरआन पढ़ने की इजाज़त बाक़ी रही तो इससे भांति-भांति के उपद्रव खड़े हो जाएंगे, जैसे यह कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपरिचित स्वर में अल्लाह की वाणी का पाठ करते हुए सुनेगा और यह समझकर उससे लड़ पड़ेगा कि वह जान-बूझकर अल्लाह की वाणी में रद्दोबदल कर रहा है, या यह कि शब्दों के ये मतभेद धीरे-धीरे वास्तव में क़ुरआन में रद्दोबदल का रास्ता खोल देंगे या यह कि अरब व ग़ैर-अरब के मेल-जोल से जिन लोगों की भाषा बिगड़ेगी, वे अपनी बिगड़ी हुई भाषा के अनुसार क़ुरआन में हेर-फेर करके उसके वाणी-सौन्दर्य को विकृत कर देंगे। इन कारणों से हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने सहाबियों के मश्विरे से यह तय किया कि तमाम इस्लामी देशों में केवल क़ुरआन की उस प्रामाणिक प्रति को छापा जाए जो हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) के हुक्म से लिपिबद्ध की गई थी और शेष तमाम दूसरी ध्वनि एवं शैलियों पर लिखे हुए ग्रंथों या अंशों के प्रकाशन को प्रतिबन्धित ठहरा दिया जाए।

आज जो क़ुरआन हमारे हाथों में है, यह ठीक-ठीक उसी ग्रन्थ के अनुसार है

जो हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने तैयार कराया और जिसकी नक़ल हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने सरकारी प्रबन्ध में तमाम इलाक़ों में भिजवाई थीं। इस समय भी संसार के अनेक स्थानों पर क़ुरआन की वे प्रमाणित प्रतियाँ मौजूद हैं। किसी को अगर क़ुरआन के सुरक्षित होने में कुछ भी सन्देह हो तो वह अपनी संतुष्टि इस प्रकार कर सकता है कि पश्चिमी अफ़्रीक़ा में किसी पुस्तक-विक्रेता से क़ुरआन की एक प्रति ख़रीदे और जावा में किसी हाफ़िज़ से ज़बानी क़ुरआन सुनकर उसका मुक़ाबला करे और फिर संसार की बड़ी-बड़ी लाइब्रेरियों में हज़रत उस्मान (रज़ि०) के समय से लेकर आज तक विभिन्न शताब्दियों के लिखे हुए जो ग्रन्थ रखे हैं, उनसे इसका मुक़ाबला करे। अगर किसी अक्षर या किसी शोशे का अन्तर वह पाए तो उसका कर्त्तव्य है कि संसार को इस सबसे बड़े ऐतिहासिक रहस्योद्घाटन से अवश्य सूचित करे। कोई शंकालु व्यक्ति क़ुरआन को अल्लाह की ओर से आया हुआ ग्रन्थ होने में सन्देह करना चाहे तो कर सकता है, लेकिन यह बात कि जो क़ुरआन हमारे हाथ में है वह बिना किसी कमीबेशी के ठीक वही क़ुरआन है जो अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल०) ने दुनिया के सामने पेश किया था, यह तो एक ऐसा ऐतिहासिक तथ्य है जिसमें किसी शंका की गुंजाइश ही नहीं है। मानव-इतिहास में कोई दूसरी किताब ऐसी नहीं पाई जाती जो इतनी प्रामाणिक हो। अगर कोई व्यक्ति उसके सही होने में सन्देह करता है, तो वह फिर इसमें भी सन्देह कर सकता है कि रोमन एम्पायर नामक साम्राज्य भी कभी संसार में रह चुका है, कभी मुग़ल भी भारत पर राज्य कर चुके हैं और 'नेपोलियन' नाम का कोई व्यक्ति भी संसार में पाया गया है। ऐसे-ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों पर सन्देह प्रकट करना ज्ञान का नहीं अज्ञानता का प्रमाण है।

क़ुरआन से लाभ उठाने हेतु कुछ आवश्यक सुझाव

क़ुरआन एक ऐसी पुस्तक है जिसकी ओर संसार में अगणित व्यक्ति अगणित उद्देश्य लेकर रुजू करते हैं। इन सबकी ज़रूरतों और उद्देश्यों को सामने रखकर कोई मश्विरा देना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। ऐसे लोगों की भीड़ में मुझे केवल उन लोगों से दिलचस्पी है, जो इसको समझना चाहते हैं और यह मालूम करने के इच्छुक हैं कि यह पुस्तक मनुष्य के जीवन की समस्याओं में उसका क्या मार्गदर्शन करती है। ऐसे लोगों को मैं यहां क़ुरआन के अध्ययन के तरीक़े के बारे में कुछ मश्विरे दूँगा और कुछ उन कठिनाइयों को दूर करने की कोशिश करूँगा जो आमतौर से इस मामले में पाठक के सामने आती हैं।

पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर क़ुरआन को पढ़ें

कोई व्यक्ति चाहे क़ुरआन पर ईमान रखता हो या न रखता हो, बहरहाल अगर वह इस पुस्तक को वास्तव में समझना चाहता है तो सबसे पहला काम उसे यह करना चाहिए कि अपने मस्तिष्क को पहले से बनाई हुई धारणाओं एवं दृष्टिकोणों से और पक्ष या विपक्ष के स्वार्थों से जिस हद तक सम्भव हो ख़ाली कर ले और समझने का विशुद्ध उद्देश्य लेकर खुले मन से उसको पढ़ना शुरू करे। जो लोग कुछ विशिष्ट विचारों को मन में लेकर इस पुस्तक को पढ़ते हैं, वे इसकी पंक्तियों में अपने ही विचार पढ़ते चले जाते हैं, क़ुरआन की उनको हवा भी नहीं लगने पाती। अध्ययन का यह तरीक़ा किसी भी पुस्तक के पढ़ने के लिए सही नहीं है, परन्तु मुख्य रूप से क़ुरआन तो इस तरीक़े से पढ़नेवालों के लिए अपने अर्थों के द्वार खोलता ही नहीं।

क़ुरआन का अध्ययन बार-बार करें

फिर जो व्यक्ति केवल थोड़ी सुधबुध हासिल करना चाहता हो, उसके लिए तो शायद एक बार का पढ़ लेना काफ़ी हो जाए मगर जो उसकी गहराइयों में उतरना चाहे उसके लिए दो-चार बार का पढ़ना भी काफ़ी नहीं हो सकता। उसे बार-बार पढ़ना चाहिए, हर बार एक ख़ास ढंग से पढ़ना चाहिए और एक विद्यार्थी की तरह पेन्सिल और कापी साथ लेकर बैठना चाहिए, ताकि ज़रूरी बातें नोट करता जाए। इस तरह जो लोग पढ़ने को तैयार हों उनको कम-से-कम दो बार पूरे क़ुरआन को केवल इस ध्येय से पढ़ना चाहिए कि उनके सामने समग्र रूप से आचार-विचार की वह पूरी व्यवस्था आ जाए, जिसे यह ग्रन्थ सामने लाना चाहता है। इस आरम्भिक अध्ययन की अवधि में वे क़ुरआन के पूरे दृश्य पर एक व्यापक दृष्टि डालने की कोशिश करें और यह देखते जाएँ कि यह ग्रंथ कौन-सी मौलिक धारणाएँ प्रस्तुत करता है? और फिर इन धारणाओं पर किस प्रकार की जीवन-व्यवस्था का निर्माण करता है? इस बीच अगर किसी स्थान पर कोई प्रश्न मन में खटके तो उस पर वहीं उसी समय कोई फैसला न कर बैठें, बल्कि उसे नोट कर लें और सब्र के साथ आगे अध्ययन जारी रखें। अधिक सम्भावना इसी की है कि आगे कहीं-न-कहीं उन्हें इसका उत्तर मिल जाएगा। अगर उत्तर मिल जाए तो अपने प्रश्न के साथ उसे नोट कर लें, किन्तु यदि प्रथम अध्ययन के समय उन्हें अपने किसी प्रश्न का उत्तर न मिले, तो सब्र के साथ वे दूसरी बार पढ़ें। मैं अपने अनुभव के आधार पर यह कहता हूँ कि दूसरी बार के गहरे अध्ययन में एकाध ही प्रश्न ऐसे रहते हैं, जिनका उत्तर अपेक्षित हो।

क़ुरआन से पूर्ण मार्गदर्शन हेतु ऐसा भी करें

इस प्रकार क़ुरआन पर एक व्यापक दृष्टि डाल लेने के बाद विस्तृत अध्ययन का आरम्भ करना चाहिए। इस सिलसिले में पाठक को क़ुरआनी शिक्षाओं का एक-एक पहलू मन में बिठाकर के नोट करते जाना चाहिए, जैसे वह इस बात को समझने की कोशिश करे कि मानवता का कौन-सा आदर्श है, जिसे क़ुरआन प्रिय समझता है और किस आदर्श के लोग उसके निकट अप्रिय और तिरस्कृत हैं। इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए उसे चाहिए कि अपनी कापी पर एक ओर 'प्रिय-व्यक्ति' और दूसरी ओर 'अप्रिय व्यक्ति' की विशेषताएं आमने-सामने नोट करता चला जाए। या जैसे वह यह मालूम करने की कोशिश करे कि क़ुरआन के नज़दीक मनुष्य का कल्याण और मुक्ति किन बातों पर निर्भर है और क्या चीज़ें हैं जिन्हें वह मनुष्य के लिए घाटा, तबाही और बर्बादी का कारण समझता है। इस विषय को भी सविस्तार जानने का सही तरीक़ा यह है कि मनुष्य अपनी कापी पर 'लाभ और घाटे के कारण' सरीखे दो शीर्षक एक-दूसरे के मुक़ाबले में लिख ले और क़ुरआन के अध्ययन के समय हर दिन दोनों प्रकार की चीज़ें नोट करता चला जाए। इसी प्रकार धारणा, नैतिकता, अधिकार, कर्त्तव्य, सामाजिकता, संस्कृति, अर्थ, राजनीति, क़ानून, अनुशासन- व्यवस्था, सन्धि, युद्ध और जीवन-संबंधी दूसरी समस्याओं में से एक-एक के बारे में क़ुरआन के आदेश आदमी नोट करता चला जाए और यह समझने की कोशिश करे कि इनमें से हर-हर विभाग का सामूहिक रूप क्या बनता है और फिर इन सबको मिलाकर जोड़ देने से पूरा जीवन-चित्र किस प्रकार का बनता है।

फिर जब मनुष्य किसी विशेष जीवन-समस्या के बारे में खोज करना चाहे कि क़ुरआन का दृष्टिकोण उसके बारे में क्या है, तो उसके लिए सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि पहले वह इस समस्या के बारे में पुराने व नए साहित्य का गहरा अध्ययन करके स्पष्ट रूप से यह मालूम कर ले कि इस समस्या की मौलिक बातें क्या हैं, मनुष्य ने अब तक उस पर क्या सोचा और समझा है, क्या मामले इसमें हल करने के हैं और कहां जाकर मानव-चिन्तन की गाड़ी अटक जाती है? इसके बाद इन्हीं हल करने योग्य समस्याओं को निगाह में रखकर मनुष्य को क़ुरआन का अध्ययन करना चाहिए। मेरा अनुभव है कि इस प्रकार जब मनुष्य किसी समस्या की छानबीन के लिए क़ुरआन पढ़ने बैठता है, तो उसे ऐसी-ऐसी आयतों में अपने प्रश्नों का उत्तर मिलता है, जिन्हें वह इससे पहले बीसियों बार पढ़ चुका होता है और कभी उसके मन में भी यह बात नहीं आती कि यहाँ यह विषय भी छिपा हुआ है।

क़ुरआन की रूह से अवगत होने का तरीक़ा

लेकिन क़ुरआन समझने के इन उपायों के बावजूद मनुष्य क़ुरआन की रूह से पूरी तरह अवगत नहीं होने पाता जब तक कि वह व्यावहारिक रूप से वे काम न करे जिसके लिए क़ुरआन आया है। यह मात्र सिद्धान्तों और विचारों की पुस्तक नहीं है कि आप आराम कुर्सी पर बैठकर उसे पढ़ें और उसकी सारी बातें समझ जाएँ। यह संसार की आम धार्मिक धारणा के अनुसार एक कोरी धार्मिक पुस्तक भी नहीं है कि मदरसे और ख़ानक़ाह में उसके सारे मर्म समझ लिए जाएँ। जैसा कि आरम्भ में बताया जा चुका है। यह एक आह्वान और आन्दोलन की पुस्तक है। इसने आते ही एक मौन प्रकृति के अति सुशील व्यक्ति को एकान्त से निकालकर अल्लाह से विमुख संसार के मुक़ाबले में ला खड़ा किया, असत्य के ख़िलाफ़ उसने आवाज़ उठवाई और समय के विधर्मियों व अवज्ञाकारियों से उसे लड़ा दिया। घर-घर से एक-एक पवित्र आत्मा और शुद्ध मनवालों को खींच-खींचकर लाई और सत्य का आह्वान करनेवाले के झण्डे तले इन सबको इकट्ठा किया। कोने-कोने से एक-एक उपद्रवी को चेलेंज देकर उठाया और सत्य के पक्षधरों से उनका संघर्ष कराया। एक अकेले व्यक्ति की पुकार से अपना काम शुरू करके अल्लाह की 'ख़िलाफ़त' (शासन) की स्थापना तक पूरे 23 साल तक यही किताब उस महान आन्दोलन की रहनुमाई करती रही और सत्य-असत्य के इस दीर्घकालीन और प्राणघातक संघर्ष के मध्य एक-एक मंज़िल और एक-एक मरहले पर इसी ने विनाश के कारण और निर्माण के तरीक़े बताए। अब भला यह कैसे संभव है कि आप सिरे से कुफ़्र और दीन के झगड़े और इस्लाम और अज्ञानता (जाहिलियत) के संघर्ष के मैदान में क़दम ही न रखें और इस संघर्ष की किसी मंज़िल से गुज़रने का आपको संयोग ही न हुआ हो और फिर मात्र क़ुरआन के शब्द पढ़-पढ़कर उसकी सारी हक़ीक़तें आपके सामने खुलकर आ जाएँ। इसे तो पूरी तरह आप उसी समय समझ सकते हैं जब आप इसे लेकर उठें और अल्लाह की ओर आह्वान का काम शुरू करें और जिस-जिस तरह यह पुस्तक रहनुमाई करती जाए, उस-उस तरह क़दम उठाते चले जाएँ। तब वे सारे तजुर्बे आपको पेश आएँगे जो क़ुरआन उतरने के वक़्त पेश आये थे। मक्का, हब्श और तायफ़ की मंज़िलें भी आप देखेंगे और बद्र व उहुद से लेकर हुनैन और तबूक तक के मरहले भी आपके सामने आएँगे, अबू जहल और अबू लहब जैसे इस्लाम विरोधियों से भी आपको वास्ता पड़ेगा, मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) और यहूदी भी आपको मिलेंगे और सर्वप्रथम ईमान लानेवालों से लेकर ऐसे लोग जो अभी इस्लाम में नहीं आए हैं

सभी तरह के इनसानी नमूने आप देख भी लेंगे और बरत भी लेंगे। यह एक और ही प्रकार का 'सुलूक' है जिसे मैं 'सुलूके क़ुरआनी' कहता हूं। इस सुलूक की शान यह है कि उसकी जिस-जिस मंज़िल से आप गुज़रते जाएँगे, क़ुरआन की कुछ आयतें और सूरतें स्वयं सामने आकर आपको बताती चली जाएँगी कि वे इसी मंज़िल में उतरी थीं और यह हिदायत लेकर आई थीं, उस समय यह सम्भव है कि शब्द, व्याकरण और भावार्थ सम्बन्धी कुछ बारीकियाँ 'सालिक' की निगाह से छिपी रह जाएँ, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि क़ुरआन अपनी आत्मा को उसके सामने खोलकर लाने में कंजूसी कर जाए।

फिर इसी मूल सिद्धान्त के अनुसार क़ुरआन के आदेश, उसकी नैतिक शिक्षाएँ, उसके आर्थिक व सांस्कृतिक निर्देश और जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में उसके बताए हुए नियम व सिद्धान्त पूर्णतः उस समय तक मनुष्य की समझ में आ ही नहीं सकते जब तक कि वह व्यावहारिक रूप से उनको बरत कर न देखे। न वह व्यक्ति इस ग्रन्थ को पूर्ण रूप से समझ सकता है, जिसने अपने व्यक्तिगत जीवन को उसकी पैरवी से आज़ाद कर रखा हो और न वह क़ौम इससे पूर्ण रूप से परिचित हो सकती है, जिसकी सारी ही सामूहिक संस्थाएँ उसके बताए हुए रवैये के ख़िलाफ़ चल रही हों।

क़ुरआन की शिक्षाएं सार्वकालिक हैं

क़ुरआन के इस दावे को हर व्यक्ति जानता है कि वह तमाम मानवजाति की रहनुमाई के लिए आया है, मगर जब कोई व्यक्ति उसको पढ़ने बैठता है तो देखता है कि उसका सम्बोधन अधिकतर अपने उतरने के समय के अरबवासियों की ओर है। यद्यपि कभी-कभी वह मानवजाति और जनसाधारण को भी पुकारता है, परन्तु अधिकतर बातें वह ऐसी कहता है, जो अरबों के स्वभाव, अरब ही के वातावरण, अरब ही के इतिहास और अरब ही की रस्म व रिवाज से सम्बन्ध रखती हैं। इन चीज़ों को देखकर वह सोचने लगता है कि जो चीज़ जनसाधरण की हिदायत के लिए उतारी गई थीं, उसमें सामयिक, स्थानीय और राष्ट्रीय तत्त्व इतना अधिक क्यों है? इस मामले की वास्तविकता को न समझने के कारण कुछ लोग इस सन्देह में पड़ जाते हैं कि शायद यह चीज़ असल में अपने समकालीन अरबों ही के सुधार के लिए थी, परन्तु बाद में ज़बरदस्ती खींच तानकर इसे तमाम मनुष्यों के लिए और सदा के लिए 'हिदायत की किताब' क़रार दे दिया गया।

जो व्यक्ति यह आपत्ति मात्र आपत्ति के लिए नहीं करता, बल्कि वास्तव में उसे समझना चाहता है, उसे मैं मश्विरा दूँगा कि वह पहले स्वयं क़ुरआन को

पढ़कर तनिक उन स्थानों पर निशान लगाए जहाँ उसने कोई ऐसा विश्वास या विचार या धारणा प्रस्तुत की हो या कोई ऐसा नैतिक सिद्धान्त, या व्यावहारिक नियम बयान किया हो जो केवल अरब ही के लिए मुख्य हो और जिसे वक़्त, ज़माने और स्थान ने वास्तव में सीमित कर रखा हो। मात्र यह बात कि वह एक मुख्य जगह या ज़माना के लोगों को सम्बोधित करके उनकी अनेकेश्वरवादी धारणाओं और रस्मों का खण्डन करता है और उन्हीं के आस-पास की चीज़ों को तर्क-सामग्री के रूप में लेकर तौहीद (एकेश्वरवाद) की दलीलें ले आता हैं, यह निर्णय कर देने के लिए काफ़ी नहीं है कि उसका आह्वान और उसकी अपील भी सामयिक और स्थानीय है। देखना यह चाहिए कि शिर्क के खण्डन में जो कुछ वह कहता है, क्या वह संसार के हर शिर्क पर उसी तरह सही नहीं उतरता जिस तरह अरब के मुश्रिकों (बहुदेववादियों) के शिर्क पर सही उतरता था? क्या इन्हीं दलीलों को हम हर ज़माने और हर देश के मुश्रिकों के विचार-सुधार के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकते? और क्या तौहीद साबित करने के लिए क़ुरआन की तर्क-पद्धति को थोड़े से रद्दोबदल के साथ हर वक़्त हर जगह काम में नहीं लाया जा सकता? अगर उत्तर 'हाँ' में है तो फिर कोई कारण नहीं कि एक विश्वव्यापी शिक्षा को केवल इस कारण सामयिक व स्थानीय समझ लिया जाए कि एक ख़ास समय में एक ख़ास जाति को सम्बोधित करके वह प्रस्तुत की गई थी। संसार का कोई भी दर्शन, कोई भी जीवन-व्यवस्था और कोई भी विचार-धारा ऐसी नहीं है जिसकी सारी बातें आदि से अन्त तक भावात्मक (Abstract) शैली में पेश की गई हों और किसी निश्चित दशा या रूप पर उसको फिट करके उनकी व्याख्या न की गई हो, ऐसी शैली एक तो सम्भव नहीं हैं और सम्भव हो भी तो जो वस्तु इस ढंग से प्रस्तुत की जाएगी वह केवल कागज़ के पृष्ठों पर रह जाएगी, मनुष्यों के जीवन में उसका समन्वय होकर एक व्यावहारिक व्यवस्था में तब्दील होना कठिन है।

फिर किसी वैचारिक, नैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलन को अगर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैलाना हो तो इसके लिए भी अनिवार्य रूप से यह ज़रूरी नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि लाभप्रद भी नहीं है कि शुरू ही से उसको बिल्कुल ही अन्तर्राष्ट्रीय बनाने की कोशिश की जाए। वास्तव में इसका सही व्यावहारिक रूप केवल एक ही है और वह यह है कि जिन विचारों, सिद्धान्तों और नियमों पर वह आन्दोलन मानव-जीवन की व्यवस्था को स्थापित करना चाहता है, उन्हें पूरी शक्ति के साथ स्वयं उस देश के सामने प्रस्तुत किया जाए जहाँ से उसका आह्वान हो रहा हो, उन लोगों के मन में बिठाने की कोशिश की जाए जिनकी भाषा, स्वभाव और प्रवृत्तियों व रुझानों से उस आन्दोलन के चलानेवाले भली-भांति

परिचित हों और फिर अपने ही देश में उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप में लाकर और उनपर एक सफल जीवन-व्यवस्था चलाकर संसार के सामने नमूना पेश किया जाए, तभी दूसरी जातियाँ उसकी ओर ध्यान देंगी और उनके बुद्धिजीवी लोग स्वयं आगे बढ़कर उसे समझने और अपने देश में प्रचलित करने की कोशिश करेंगे। इसलिए मात्र यह बात कि किसी आचार-विचार सम्बन्धी व्यवस्था को शुरू में एक ही जाति के सामने प्रस्तुत किया गया था और तर्क का सारा ज़ोर उसी के समझाने और सन्तुष्ट करने पर लगा दिया गया था, इस बात की दलील नहीं है कि वह आचार-विचार सम्बन्धी व्यवस्था मात्र राष्ट्रीय है। वास्तव में जो विशेषताएँ एक राष्ट्रीय व्यवस्था को एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था से और एक सामयिक व्यवस्था को एक सार्वकालिक व्यवस्था से अलग करती हैं, वे ये हैं कि राष्ट्रीय व्यवस्था या तो एक राष्ट्र या जाति की श्रेष्ठता और उसके हक़ों की दावेदार होती है या अपने भीतर कुछ ऐसे सिद्धान्त और धारणाएँ रखती है जो दूसरी जातियों में नहीं चल सकते। इसके विपरीत जो व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय होती है, वह तमाम मनुष्यों को बराबर दर्जा और बराबर के हक़ देने को तैयार होती है और उसके सिद्धान्तों में भी विश्व-व्यापकता पाई जाती है। इसी प्रकार एक सामयिक व्यवस्था अनिवार्य रूप से अपनी नींव कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर रखती है, जो कुछ समय के बाद अव्यावहारिक हो जाते हैं और इसके विपरीत एक सार्वकालिक व्यवस्था के सिद्धान्त तमाम बदलती हुई परिस्थितियों पर फ़िट होते चले जाते हैं। इन विशेषताओं को निगाह में रखकर कोई व्यक्ति स्वयं क़ुरआन को पढ़े और उन चीज़ों को ज़रा निर्धारित करने की कोशिश करे, जिनके आधार पर वास्तव में यह अनुमान किया जा सकता हो कि क़ुरआन की प्रस्तुत की हुई व्यवस्था सामयिक और राष्ट्रीय है?

क़ुरआन के बारे में यह बात भी एक सामान्य पाठक के कान में पड़ी हुई होती है कि यह एक विस्तृत आदेश-पत्र और क़ानून की किताब है। मगर जब वह उसे पढ़ता है तो उसमें समाज, संस्कृति, अर्थ और राजनीति आदि से सम्बन्धित विस्तृत आदेश तथा नियम उसे नहीं मिलते, बल्कि वह देखता है कि नमाज़ और ज़कात जैसे फ़र्ज़ के बारे में भी, जिन पर क़ुरआन बार-बार इतना ज़ोर देता है, उसने कोई ऐसा नियम नहीं बनाया है जिसमें तमाम आवश्यक आदेशों का सविस्तार विवरण हो। यह चीज़ भी मनुष्य के मन में उलझन पैदा करती है कि आख़िर यह किस अर्थ में 'आदेश-पत्र' (हिदायतनामा) है।

इस मामले में सारी उलझनें केवल इसलिए पैदा होती हैं कि मनुष्य की दृष्टि से वास्तविकता का एक पहलू बिल्कुल ओझल रह जाता है, अर्थात् यह कि

अल्लाह ने सिर्फ़ किताब ही नहीं उतारी थी, बल्कि एक पैग़म्बर भी भेजा था। अगर असल योजना यह हो कि बस निर्माण का एक नक़्शा लोगों को दे दिया जाए और लोग उसके अनुसार स्वयं बिल्डिंग बना लें, तो इस स्थिति में निस्सन्देह निर्माण के एक-एक भाग का सविस्तार विवरण हमें मिलना चाहिए, मगर जब निर्माण-सम्बन्धी आदेश के साथ-साथ एक इंजीनियर भी सरकारी तौर से नियुक्त कर दिया जाए और वह उन आदेशों के अनुसार एक इमारत बनाकर खड़ी कर दे, तो फिर इंजीनियर और उसकी बनाई हुई इमारत को छोड़कर नक़्शे ही में तमाम छोटी-बड़ी चीज़ों को खोजना और फिर उसे न पाकर नक़्शे की अपूर्णता का शिकवा करना ग़लत है। क़ुरआन आंशिकता की किताब नहीं है, बल्कि सिद्धान्त-नियम और समग्रता की किताब है। उसका असल काम यह है कि इस्लामी-व्यवस्था के वैचारिक तथा नैतिक आधारों को पूरी व्याख्या के साथ न केवल यह कि प्रस्तुत करे, बल्कि बौद्धिक तर्क और भावनात्मक अपील, दोनों तरीक़े से ख़ूब दृढ़ कर दे। अब रहा इस्लामी जीवन का व्यावहारिक रूप, तो इस मामले में वह मनुष्य की रहनुमाई इस तरीक़े से नहीं करता कि जीवन के एक-एक पहलू के बारे में विस्तृत नियम और अधिनियम बनाए, बल्कि वह जीवन के हर विभाग की मुख्य परिसीमाएँ बता देता है और स्पष्ट रूप से कुछ स्थानों पर शिलाएँ खड़ी कर देता है, जो यह बात निश्चित कर देती हैं कि अल्लाह की इच्छा के अनुसार इन विभागों की स्थापना और निर्माण किन रेखाओं पर होनी चाहिए। इन आदेशों के अनुसार व्यावहारिक रूप से इस्लामी जीवन की रूप-रेखा बनाना नबी (सल्ल०) का काम था। उन्हें नियुक्त ही इसलिए किया गया था कि संसार को उस व्यक्तिगत चरित्र और आचरण और उस समाज और उस राज्य का आदर्श दिखा दें, जो क़ुरआन के दिए हुए सिद्धान्तों की व्यावहारिक व्याख्या हो।

क़ुरआनी आदेशों की विविध व्याख्या

एक और प्रश्न जो आमतौर से लोगों के मन में खटकता है, वह यह कि एक ओर तो क़ुरआन उन लोगों की अत्यन्त निन्दा करता है, जो अल्लाह की किताब के आ जाने के बाद फ़िरक़ाबन्दी और मतभेदों में पड़ जाते हैं और अपने धर्म के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं और दूसरी ओर क़ुरआन के आदेशों की व्याख्या में केवल बाद के लोगों में ही नहीं, इमामों, सहाबा के बाद के लोगों और स्वयं सहाबियों तक के बीच इतने मतभेद पाए जाते हैं कि शायद आदेश-सम्बन्धी कोई एक भी आयत ऐसी न मिलेगी जिसकी एक व्याख्या सर्वमान्य हो। क्या ये सभी लोग उस निन्दा के पात्र हैं जो क़ुरआन में आई है? अगर नहीं तो फिर वह

कौन-सी फ़िरक़ाबन्दी और मतभेद है, जिससे क़ुरआन रोकता है ?

यह एक अति व्यापक समस्या है, जिसकी विस्तृत वार्ता का यहाँ मौक़ा नहीं है। यहाँ क़ुरआन के एक सामान्य अध्ययनकर्ता की उलझन दूर करने के लिए केवल इतना इशारा काफ़ी है कि क़ुरआन उस स्वस्थ मतभेद का विरोधी नहीं है, जो धर्म में एक मत और इस्लामी गिरोह में 'एक' रहते हुए मात्र आदेशों व नियमों का विस्तृत रूप निर्धारित करने के उद्देश्य से निष्ठापूर्ण खोज के आधार पर किया जाए, बल्कि वह निन्दा उस मतभेद की करता है जो स्वार्थपूर्ण हो और वक्र-दृष्टि से शुरू हो और फ़िरक़ाबन्दी और आपसी झगड़ों तक स्थिति पहुँचा दे। ये दोनों प्रकार के मतभेद न अपनी वास्तविकता में समान हैं और न अपने परिणामों में एक-दूसरे से समानता रखते हैं कि दोनों को एक ही लकड़ी से हाँक दिया जाए। पहली प्रकार का मतभेद तो तरक़्क़ी की जान और जीवन की आत्मा है। वह हर उस समाज में पाया जाएगा, जो बुद्धि व विवेक रखनेवाले लोगों पर आधारित हो। उसका पाया जाना जीवन की निशानी है और उससे ख़ाली सिर्फ़ वही सोसाइटी हो सकती है, जो बुद्धिजीवियों से नहीं, बल्कि लकड़ी के कुन्दों से बनी हो। रहा दूसरे प्रकार का मतभेद तो पूरा जगत जानता है कि इसने जिस गिरोह में भी सिर उठाया उसे टुकड़े-टुकड़े करके छोड़ा, इसका प्रकट होना स्वास्थ्य की नहीं, रोग की निशानी है और इसके परिणाम कभी किसी उम्मत (समुदाय) के हक़ में भी लाभप्रद नहीं हो सकते। इन दोनों प्रकार के मतभेदों का अन्तर स्पष्ट रूप से यों समझिए :—

एक स्वरूप तो वह है, जिसमें अल्लाह और रसूल के आज्ञापालन पर समुदाय के सब लोग सहमत हों, आदेशों का स्रोत भी सर्वसम्मति से क़ुरआन और सुन्नत को माना जाए, फिर दो आलिम किसी आंशिक समस्या की खोज में, या दो क़ाज़ी किसी मुक़द्दमे के फ़ैसले में एक-दूसरे से मतभेद करें, मगर इनमें से कोई भी न तो उस समस्या को और उसमें अपनी-अपनी राय को धर्म का आधार बनाए और न उससे मतभेद करनेवाले को विधर्मी कह दे, बल्कि दोनों अपनी दलीलें देकर अपनी हद तक खोज का हक़ अदा कर दें और यह बात जनमत पर या अगर अदालती मामला हो तो देश के उच्चतम न्यायालय पर या अगर सार्वजनिक मामला हो तो संगठन-व्यवस्था पर छोड़ दें कि वे दोनों रायों में से जिसे चाहे स्वीकार करें या दोनों को जायज़ रखें।

दूसरा स्वरूप यह है कि मतभेद सिरे से धर्म की बुनियादों ही में हो या यह कि कोई आलिम या सूफ़ी या मुफ़्ती या प्रवक्ता या नेता किसी ऐसी समस्या के बारे में, जिसे अल्लाह और रसूल ने धर्म का मूल मामला नहीं बताया था, एक राय अपनाए और ख़ामख़ाह खींच-तानकर उसे धर्म का मूल मामला बना डाले और

फिर जो उससे मतभेद करे उसे धर्म और समुदाय से निकल जाने वाला कह डाले और अपने समर्थकों का एक जत्था बनाकर कहे कि असल इस्लाम के अनुयायी बस ये हैं और बाक़ी सब विधर्मी हैं, जहन्नमी हैं और हांक-पुकार कर कहे कि मुस्लिम है तो बस इस जत्थे में आ जा, वरना तू मुस्लिम ही नहीं है।

क़ुरआन ने जहाँ कहीं भी मतभेद और फ़िरक़ाबन्दी का विरोध किया है, इससे उसका अभिप्राय यह दूसरे प्रकार का विरोध ही है। रहा पहले प्रकार का मतभेद, तो इसके अनेक उदाहरण स्वयं नबी (सल्ल०) के सामने पेश आ चुके थे और आपने केवल यही नहीं कि उसको जायज़ रखा, बल्कि इसकी सराहना भी की, इसलिए कि यह मतभेद तो इस बात का पता देता है कि समाज में विचार व चिन्तन, खोज व छान-बीन और सूझ-बूझ की क्षमताएँ मौजूद हैं और उसके बुद्धिजीवी लोगों को अपने धर्म से और उसके आदेशों से दिलचस्पी है और उनकी प्रतिभाएँ अपनी जीवन-समस्यों का हल धर्म के बाहर नहीं, बल्कि उसके भीतर ही खोजती हैं। समाज समष्टीय रूप से इस स्वर्णिम नियम पर अमल कर रहा है कि सिद्धान्त में एकमत रहकर अपनी एकता भी बाक़ी रखे और फिर अपने ज्ञानियों व चिन्तकों को सही सीमाओं के भीतर शोध एवं अनुसंधान की आज़ादी देकर विकास के अवसरों को भी बाक़ी रखे।

"यह मेरा मत है, जाननेवाला तो अल्लाह ही है, उसी पर मेरा भरोसा है और उसकी ओर मैं रुजूअ होता हूँ।"

इस भूमिका में उन तमाम समस्याओं और मामलों को समेटना मेरा उद्देश्य नहीं है, जो क़ुरआन के अध्ययन करते समय एक पाठक के मस्तिष्क में पैदा होते हैं। इसलिए कि इन प्रश्नों का अधिकांश ऐसा है जो किसी-न-किसी आयत या सूरा के सामने आने पर मन को खटकता है और इसका उत्तर 'तफ़हीमुल क़ुरआन' में अवसर-अवसर पर दे दिया गया है। इसलिए ऐसे प्रश्नों को छोड़कर मैंने यहाँ केवल उन व्यापक समस्याओं पर वार्ता की है, जो समग्र रूप से पूरे क़ुरआन से सम्बन्ध रखती हैं। पाठकों से मेरा निवेदन है कि मात्र इस भूमिका को देखकर ही उसके 'अधूरे' होने का फ़ैसला न कर दें, बल्कि पूरी पुस्तक (तफ़हीमुल क़ुरआन) देखने के बाद अगर उनके मन में कुछ प्रश्न के उत्तर देने योग्य बाक़ी रह जाएँ या किसी प्रश्न के उत्तर को वे अपर्याप्त पाएँ तो मुझे उससे सूचित करें।